• वर्ष : 1 • अंङ्क : 2 • मई-जुलाई 2014 • ISSN : 2347-6605

वाक् सुधा

VAAK SUDHA

(अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका)

संरक्षक :

प्रो. दलवीर सिंह चौहान

पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

आगामी अंक
5 अगस्त, 2014

रूपेश कुमार चौहान

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं सम्पादक

द्वारा 47, ब्लॉक ए-3, गली नं. 5, धर्मपुरा एक्सटेंशन, दिल्ली-43 से प्रकाशित एवं डॉल्फिन प्रिंटोग्राफिक्स, 4ई/7, पाबला बिल्डिंग, झंडेवालान् एक्सटेंशन, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

दूरभाष संख्या-08287473549, 09911585232, 09810636082

Email: vaaksudha@gmail.com • Website : www.vaaksudha.com

प्रकाशनार्थ सूचना

* लेखक से अनुरोध है कि शोध-पत्र वॉकमैन चाणक्य 905 फॉन्ट एवम् वर्ड या पेजमेकर में टङ्कण करा कर शोध-पत्रिका के ई-मेल पर प्रेषित करें।
* शोध-लेख न्यूनतम 2500 शब्द एवं अधिकतम 10000 शब्द तक मान्य है तथा इसके साथ लेखक का पद-नाम एवं स्वयं का छवि-चित्र अत्यन्त आवश्यक है।
* प्रकाशनार्थ प्राप्त लेख सलाहकार परिषद् एवम् संपादक मण्डल की अनुमति के पश्चात् स्तरीय होने पर ही प्रकाशित होगा।
* लेख में यदि चित्र का प्रयोग हुआ है तो उसे भी अवश्य प्रेषित करें।
* **'वाक् सुधा'** किसी भी तरह के परामर्श का स्वागत करती है, इसलिए अपनी प्रतिक्रिया अवश्य दें।
* यह स्पष्ट किया जाता है कि शोध पत्र में प्रस्तुत तथ्य शोध लेखक के अपने विचार हैं तथा इसमें सलाहकार परिषद् एवं सम्पादक मण्डल के विचारों की उद्भावना स्पष्टतः नहीं है। अतः इसके लिए शोध-लेखक स्वयं उत्तरदायी है।
* शोध-पत्रिका की किसी भी सामग्री को प्रकाशक एवं मुद्रक की जानकारी के बिना अन्यत्र प्रकाशन अनुचित होगा।
* **आगामी अङ्क में प्रकाशनार्थ लेख 15 जुलाई, 2014 तक अवश्य प्रेषित कीजिए।** यदि आप लेख टङ्कण करा कर भेजने में असमर्थ हैं तो हस्तलिखित प्रति पत्रिका में दिये गये पत्र-व्यवहार के पते पर भेज दें।
* वर्ष के अंतिम अङ्क के प्रकाशन से पूर्व प्रथम अङ्क पत्रिका की वेबसाइट पर अध्ययन हेतु उपलब्ध हो जाएगा।
* अपेक्षित आर्थिक सहयोग अथवा अंशदान के लिए हम आपके अत्यंत आभारी रहेंगे।

© सर्वाधिकार सुरक्षित

ISSN : 2347-6605

सामान्य शुल्क		सदस्यता शुल्क	
वैयक्तिक शुल्क (एक प्रति)	– ₹100	सदस्यता शुल्क (वार्षिक)	– ₹1000
संस्थागत शुल्क (एक प्रति)	– ₹150	संस्थागत सदस्यता शुल्क (वार्षिक)	– ₹1500
वैयक्तिक वार्षिक शुल्क	– ₹300	पञ्च वार्षिक शुल्क	– ₹5000
संस्थागत वार्षिक शुल्क	– ₹500	आजीवन सदस्यता शुल्क	– ₹10000

पत्र-व्यवहार का पता :
मकान नं.-41, सूरज नगर (दुर्गा मंदिर के सामने),
आजादपुर, दिल्ली-110033

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय 6

महाभाष्य के मनोरम तत्त्व 7
डॉ. ललित कुमार मण्डल

'सलाम आख़िरी' में अभिव्यक्त वेश्या-जीवन का यथार्थ 11
अमित रंजन

नई कविता और रस के प्रतिमान 15
राहुल कुमार

रामायणकालीन न्याय-व्यवस्था भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में 18
रीना कुमारी

आधुनिक भाषा-विज्ञान की पृष्ठभूमि 23
विक्रम गुप्ता

द्वैत वेदान्त में प्रमाण-विचार 26
आशुतोष कुमार

मीरा के जीवन संघर्ष और विद्रोही चेतना का भक्ति भावना में रूपान्तरण 30
डॉ. भावना शर्मा

सत्ता और उसके ठेकेदारों का पोस्टमार्टम करती कविताएँ 38
निर्भय कुमार

शाङ्करभाष्य गीता में प्रतिपादित उपासना विधि 43
डॉ बिभूति कुमार झा

शशिप्रभा शास्त्री : उपन्यास परिचय और नारी पात्र ... 45
डॉ. उषा रानी

'जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ' में अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक सद्भावना का स्वरूप 50
श्वेता

अव्यावहारिक वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था 56
प्रभात कुमार

सांख्यदर्शन में पुरुष 61
डॉ. वेदनिधि

'स्तानिस्लावस्की' का 'अभिनय' सिद्धांत 64
लवकुश कुमार

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था व 'अफसपा' 69
श्रीमती मिनी सिन्हा

चण्डी चरित्र की प्रासंगिकता 74
डॉ. शोभा कौर

संस्कारों में विवाह संस्कार का महत्त्व 78
धर्मेन्द्र कुमार मिश्र

नागार्जुन के उपन्यासों में स्त्री-संघर्ष 81
अजय कुमार

'पोस्टर' में व्यक्त विद्रूप व्यवस्था का विद्रोह 84
रिज़वाना फ़ातिमा

रामानन्द के राम 87
राजेश कुमार

'हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत' पुस्तकमाला के अंतर्गत प्रकाशित 'बालकृष्ण भट्ट: प्रतिनिधि संकलन' का 'रिव्यू' 91
अभिषेक शुक्ल

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में गैर-ब्राह्मण और दलित प्रतिरोध 96
विकास कुमार

बौद्ध सम्मत 'अपोह' शब्द, अर्थ एवं स्वरूप 99
डॉ. शशिबाला

नागार्जुन के काव्य में प्रकृति 102
सज्जन कुमार

पुराणों में वर्णित प्रलय का स्वरूप 105
संजय कुमार पाण्डेय

अम्बेडकर की विचारधारा और दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र 109
रमा शंकर सिंह

अनुवाद की परंपरा तथा इसका महत्त्व 112
राकेश कुमार सिंह

सब धर्मों में श्रेष्ठतम् धर्म 115
डॉ. धनेश कुमार सुमन

भारतीय संस्कृति में मूल्यों की उपादेयता 119
डॉ. समीर मिश्र

बचपन 121
प्रतिभा

रहीम के नीतिकाव्य की प्रांसगिकता 124
वीरेन्द्र यादव

गीता का कर्मयोग 127
रश्मि कुमारी

नाट्य-वर्जनाएँ 130
डॉ. कल्पना शर्मा

अभिशप्त कुटुम्ब की गाथा : आधे-अधूरे 133
सतेन्द्र कुमार शुक्ल

रूपमाला - प्रक्रियात्मक वैशिष्ट्य 137
डॉ. अभिमन्यु

धर्मसूत्रों में वर्णित आर्थिक गतिविधियाँ 140
अनुज कुमार

हिंदी यात्रा-साहित्य में उभरते साहित्यिक आयाम 143
सुनील कुमार वर्मा

ISSN : 2347-6605

मम्मट के काव्यप्रकाश में वर्णित गुण 148
डॉ. संतोष कुमार
चित्रा मुद्गल की कहानियों में चित्रित सामाजिक समस्याएँ 151
प्रियंका कुमारी
नामधातु क्रियारूप : अर्थवैज्ञानिक दृष्टि 154
डॉ. नीलम गौर
कबीर का उद्घोष 159
अर्चना उपाध्याय
प्रतिभा में वाक्यार्थ : भर्तृहरि की दृष्टि 163
डॉ. ए. सुधादेवी
'मीरा' फिल्म : स्त्री मुक्ति का प्रश्न 167
किरन नेगी
कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम् 173
डॉ. मंजू लता
साहित्य और सिनेमाः अन्तर्संबन्ध 178
डॉ. मनीष कुमार चौधरी
वैदिक कालीन समाजवाद 183
डॉ. अशोक कुमार सिंह
तुलसी की समन्वय भावना 186
सुमित कुमार
स्वयं प्रकाश की कहानियों में सांप्रदायिकता विरोध के स्वर 189
रेखा सिंह
समकालीन परिस्थितियों के संदर्भ में 'विश्वामित्र' 193
डॉ. कृष्ण मोहन वत्स
विशेष योग्यता प्राप्त व्यक्ति-आत्म पहचान 197
सुमन शर्मा
सियारामशरण गुप्त की स्फुट कविताएँ एवं गाँधीवाद 201
आशुतोष तिवारी
कथ्य के आलोक में विजय तेंदुलकर के नाटक 207
अर्चना
उपन्यासकार व्योमकेस शास्त्री 211
डॉ. महेशपाल सिंह
यजुर्वेद में दिशा वास्तु 215
डॉ. स्वर्ण रेखा
''गेजा बबुआ'' : विकलांग विमर्श 219
राजकुमार यादव
गोस्वामी तुलसीदास जी की कालजयी रचना रामचरितमानस : वैज्ञानिक चित्रण 221
डॉ. ओम मिश्रा
प्रचलित पञ्चाङ्गों के स्वरूप की प्रासंगिकता 225
कान्ता
गुरुरामभद्राचार्य जी का व्यक्तित्त्व 228
कुमुद रानी गर्ग
राजपूताने में किसान आंदोलन 231
हेमन्त चौहान
मम्मट का काव्य लक्षण 234
सुभाष कुमार सिंह
''बैसाखी'' कहानी का विश्लेषणात्मक अध्ययन 238
डॉ. ओम मिश्रा
सांख्य दर्शन की प्राचीनता 240
डॉ. वेदनिधि
हिंदी आत्मकथा साहित्य और स्त्री आत्मकथा का विकास 244
अंकित अभिषेक
संस्कार 248
डॉ. कविता
पालकालीन दक्षिण बिहार में शिक्षा, साहित्य, भाषा और धर्म का अन्तर्सम्बन्ध (ई. 750-1200) 251
मृत्युंजय कुमार
"वेद एवं विचार क्रांति" आधुनिक भारतीय मनीषियों की चिंतनधारा में अवगुण्ठित वैदिक तत्त्व 253
सौरभ
सफलता के सोपान 258
डॉ. एम.एम. रहमान
भारत छोड़ो आंदोलन के विशेष संदर्भ में स्वायत्तशासी सरकारों की स्थापना : एक अध्ययन ... 259
दिग्विजय यादव
प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति एवं शिक्षा केन्द्र 261
डॉ. एम.एम. रहमान
नारी संवेदना का उल्लेखनीय दस्तावेज़ : हिंदी साहित्य का आधा इतिहास 264
मीनाक्षी सिंह
पंत की कविताओं में प्रकृति चिंतन 267
प्रभांशु ओझा
विदुरनीतौ जीवनोपयोगिसिद्धान्ताः 271
डॉ. शंकरदत्तपाण्डेयः
विश्वबन्धुत्व एवं गुणत्रय श्रीमद्भगवद्गीता के परिप्रेक्ष्य में 273
डॉ. साहिब सिंह
महाकवि कालिदास की पर्यावरण चेतना : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता 275
डॉ. डौली शर्मा
विभिन्न धर्मों में संगीत का महत्त्व 277
डॉ. मंजीत
'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' कविता की आलोचना ... 284
सुखजीत सिंह

अर्चना उपाध्याय

कबीर का उद्‌घोष

मध्ययुगीन साधकों और कवियों में कबीर का स्थान अद्वितीय है। कबीर का व्यक्तित्व बहुआयामी है। उनमें साधक की विनम्रता; साहित्यकार की बौद्धिकता तथा समाज-स्रष्टा का कर्त्तव्य बोध सभी एक सूत्र में पिरोया हुआ परिलक्षित होता है। कबीर के काव्य की शास्त्रीय विवेचना करने पर उसमें किसी निश्चित शैली, सुगढ़ भाषा या अन्य किसी तरह का कलात्मक विन्यास नहीं मिलता। कबीर का दर्शन भी एक निश्चित विचार या सिद्धान्त का पालन नहीं करता, उसमें विविधता है। उन्हें जो ठीक लगा, उसे बिना लाग-लपेट के कह दिया। इसलिए कबीर के काव्य को जब साहित्यिक सिद्धान्तों तथा काव्यशास्त्रीय सौंदर्य में बाँध कर देखा जाता है तो निराश होना पड़ता है। कबीर के काव्य में उपस्थित मानवतावादी दृष्टिकोण उसे मूल्यवान बनाता है। ''उनका काव्य महान् है, इसलिए कि उसका संदेश महान् है। वास्तव में कबीर जिस जीवन-यथार्थ का चित्रण करना चाहते थे उसके लिए न तो किसी अध्ययन की जरूरत थी, न किसी शास्त्रीय पांडित्य की। वे जो संदेश देना चाहते थे उसके लिए न तो किसी कलात्मक सौंदर्य की जरूरत थी न किसी अलंकृत भाषा की। इसलिए कबीर का काव्य साहित्यिक मर्यादा की कसौटी पर भले ही खरा न उतरे लेकिन उसने जीवन को एक दिशा अवश्य दी। कबीर की वाणी में लोगों को रस भले ही न मिला हो लेकिन उन पर उसका प्रभाव जरूर पड़ा।''[1]

'मसि कागद छूयो नहीं कलम गह्यों नहिं हाथ'- यह उक्ति कबीर के मार्ग में कभी बाधक नहीं बनी। क्योंकि, किसी साहित्य का वास्तविक मूल्य उसके काव्यशास्त्रीय सौंदर्य में नहीं बल्कि उसमें निहित संदेश में है। कबीर के ये संदेश जितने तत्कालीन समाज में सार्थक थे, उतने ही वर्तमान समाज में भी उपयोगी हैं। कबीर की वाणी उनके अनुभवों का स्वर है। उनका ज्ञान किसी पोथी को पढ़कर नहीं उपजा है अपितु, स्वचिन्तन से उद्‌भूत अनुभवसिद्ध ज्ञान है। अनुभवसिद्ध होने के कारण वह प्राणवान है, स्वत:-प्रामाणिक है-

मैं कहता आँखिन की देखी।
तू कहता कागद की लेखी॥

''कवि केवल परम्परा का पालक नहीं होता बल्कि वह उन्नत विवेक, स्वाधीन चिंतन और आत्मानुभूत निर्णयों के द्वारा इतिहास की गति को मोड़ता हुआ नयी मानसिकता का जन्मदाता भी होता है। अवश्य ही यह नयी मानसिकता परिस्थितियों की ही उपज होती है पर यह उस कवि की अपनी कमायी होती है- उसकी जागरूक चेतना होती है- जो उसकी रचना को एक विशेष चमक और शक्ति देती है। *** असली महत्त्व उन स्वानुभूतियों का होता है जिन्हें कवि मनुष्य की प्रकृति और समकालीन परिस्थितियों के प्रकाश में अर्जित और अंकित करता है। किसी कवि की रचना को कोई बड़ा अर्थ या विशेष शक्ति इन्हीं से मिलती है। कबीर की कविता में यह स्वाधीन और जागरूक चिंतन बहुत है। वह स्वानुभूत रूपों का बयान अधिक करती है।''[2] कबीर के सम्पूर्ण साहित्य में उनका स्वतन्त्र चिन्तन दिखाई देता है। वे साहित्य सभी प्रकार के अतार्किक व्यवहार का खण्डन करते हैं, साथ ही विवेक युक्त तार्किक व्यवहार के पक्ष में अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। कबीर समकालीन समाज में फैली हुई कुरीतियों को देख कर क्षुब्ध हुए और मानव को उनसे निकालने का प्रयास किया। उन्होंने सामाजिक असमानता, द्वेष-भाव तथा रूढ़ियों-आडम्बरों में जकड़े समाज को सहज मानव-धर्म से परिचित कराया। सामाजिक विसंगतियों में जकड़ा समाज सहज मानव-धर्म भूल रहा था इसलिए, मनुष्य पथ-भ्रष्ट हो रहा था। कबीर समाज की इस दुर्दशा से व्यथित थे।

कबीर की व्यथा का कारण व्यक्तिगत नहीं है, समष्टिगत है। वे आत्म-सुख के लिए चिन्तित नहीं है अपितु, पूरे समाज को सुखी देखना चाहते हैं। सामयिक परिस्थितियों को देखकर कबीर का हृदय क्रन्दन करता रहा। कबीर ने अनुभव किया कि संसार अपने 'मैं' के लिए मर रहा है। जिस 'मैं' का कोई अस्तित्त्व नहीं है। यह 'मैं' एक दिन काल के गाल में समा जाने वाला है। संसार को इसका तनिक भी भान नहीं है। वह अपने खाने और सोने में ही संतुष्ट है इसलिए सुखी है। संसार अपने अज्ञान के कारण उस सत्य को नहीं देख पा रहा है, जिसे कबीर

देख लेते हैं। संसार के संभावित भविष्य को कबीर अपनी अन्तर्दृष्टि से देखते हैं इसलिए, बेचैन हैं-

सुखिया सब संसार है खावै अरू सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै अरू रोवै॥

समदर्शी कबीर की दृष्टि में न कोई छोटा है और न ही बड़ा है, न कोई राजा है और न ही रंक है। उनकी दृष्टि में सभी बराबर हैं। हिन्दू-मुस्लिम का कोई बँटवारा उनके लिए नहीं है। वे विश्व-कल्याण की कामना करते हैं। अपनी सार्वजनिक सामाजिक भावना के करण कबीर लोकप्रिय हुए। कबीर का भक्त-हृदय और कवि-मस्तिष्क दोनों ही समाज के हित के लिए तत्पर रहा। कबीर के संत-हृदय में किसी के लिए कोई दुराग्रह नहीं है। उनकी न तो किसी से दोस्ती है और न ही किसी से वैर है। वे समाज के मध्य में खड़े होकर सबके खैर की दुआ माँगते हैं-

कबीरा खड़ा बजार में, माँगे सबकी खैर।
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर॥

कबीर का अपना मार्ग है। अपना अलग धर्म है। उन्होंने जिस धर्म को स्वीकार किया उसमें किसी भी तरह के पाखण्ड और मिथ्याचार की मान्यता नहीं है। उन्होंने सहज मानव-धर्म को आत्मसात किया। ईश्वरोपासना के लिए किसी भी लोक-प्रचलित पद्धति या कर्मकाण्ड को अनावश्यक माना। जो कुछ भी सच्चा और अच्छा हो, कबीर ने उसे ही स्वीकार किया। जिस धर्म-कर्म से मानव-जाति का उपकार हो वही धर्म सर्वश्रेष्ठ है, वही अपनाने के योग्य है। रूढ़ियों तथा बेतुकी मान्यताओं से आबद्ध नियमों से समाज का शुभ नहीं हो सकता है। सभी सामाजिक नियम जो सत्य की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं, वे त्याज्य हैं। यहाँ तक कि धर्म-ग्रन्थों में लिखित सभी उक्तियाँ भी आँख मूँद कर अपनाए जाने के योग्य नहीं हैं। इसलिए कबीर ने अनर्गल वस्तुओं को त्याग कर, सार्थक तत्व अपनाने का संदेश दिया। वे सार ग्रहण करने के लिए कहते हैं-

साधु ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहे, थोथा देई उड़ाय॥

कबीर ने माना कि धार्मिक कट्टरता से असहिष्णुता का जन्म होता है। धार्मिक विभेद से समाज में कभी भी सुख-शांति स्थापित नहीं हो सकती है। धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर होने वाले सामाजिक बँटवारे से कबीर विक्षुब्ध हुए। कबीर ने विचार किया कि हिन्दू-मुस्लिम के बीच धार्मिक-सांस्कृतिक एक्य होना अत्यावश्यक है, तभी दोनों सम्प्रदायों के आपसी मतभेद दूर हो सकते हैं। दोनों ही धर्मों के मतावलम्बियों के आराध्य एक हों तो पारस्परिक प्रेम और भाई-चारे में वृद्धि होगी। कबीर किसी धर्म को न तो स्वीकार करते हैं न ही तिरस्कार करते हैं। सभी धर्मों के बाह्य आडम्बरों को त्याग कर उसके स्वस्थ रूप को ग्रहण करते हैं। हिन्दू तथा मुसलमान जो राम और खुदा के नाम पर विभाजित हैं, कबीर उन्हें समझाने का प्रयास करते हैं। कबीर साधारण जनता को सम्बोधित करते हुए पूछते हैं कि दो ईश्वर कहाँ से आए? ईश्वर तो एक है। उसके अनेक रूप कैसे हो गए? कबीर मनुष्यों की इस नादानी पर हैरान होते हैं। उनकी समझ में तो ब्रह्म एक है। उसी एक का विस्तार समस्त सृष्टि में है। वही एक ईश्वर जन-जन में विराजता है। समाज में यह भ्रामक धारणा कि हिन्दू और मुसलमान के ईश्वर अलग-अलग हैं, कहाँ से आई-

भाई रे दुई जगदीस कहाँ ते आया,
कहु कवने भरमाया।

कबीर-साहित्य का मूल स्वर ही प्रेम है। कबीर ईश्वरीय-प्रेम और मानवीय प्रेम दोनों से सराबोर हैं। यूँ कहा जा सकता है कि उनका ईश्वर-प्रेम भी मानव-प्रेम में ही मूर्त होता है। प्रेम सभी ज्ञान का सार तत्त्व है। मनुष्य जीवन के सभी क्रियाओं में प्रेम अनिवार्य तत्त्व है। योगी हो अथवा भोगी हो, सभी का जीवन प्रेम के द्वारा ही संचालित होता है। योगी, योग में प्रेम के दर्शन करता है और भोगी, भोग से प्रेम करता है। "मानव जीवन का हर काम अपने-आप में प्रेम की माँग करता है। सामाजिकता के मूल में भी इसी प्रेम तत्त्व का ही कोई-न-कोई रूप सक्रिय हुआ करता है। यही प्रेम-तत्त्व किसी कर्म को मानवीय बनाता है। इसी के अभाव में कर्म यान्त्रिक बन जाता है।"[3]

प्रेम संकीर्णता से विस्तार की ओर ले जाता है। मनुष्य स्वयं से प्रेम करता है, परिवार से प्रेम करता है, समाज से प्रेम करता है, देश से प्रेम करता है फिर, समग्र विश्व से प्रेम करता है। उसकी चेतना का क्रमशः विस्तार होता है। आन्तरिक चेतना का यही विकास उसे परमात्मा तक ले जाता है। उसे जन-जन में, कण-कण में ब्रह्म का दर्शन सुलभ होता है। अन्ततः ब्रह्म-ज्ञानी ही वास्तविक तत्त्व-ज्ञानी होता है। यह वास्तविक तत्त्व प्रेम है। कबीर के अनुसार, पुस्तकीय ज्ञान से कोई भी व्यक्ति ज्ञानी नहीं हो सकता है। सच्चा ज्ञानी तो वही है जिसने प्रेम का पाठ पढ़ा हो-

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

जिस समाज में उद्योग नहीं है, वह समाज कबीर को स्वीकर नहीं है। कबीर ने कर्म के मर्म को समझा। जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए, समाज के विकास के लिए कर्म आवश्यक है। धर्म में भी कर्म और गृहस्थी में भी कर्म, सभी स्थानों पर कर्म की महत्ता है। आलसी व्यक्ति समाज पर तो बोझ है ही, स्वयं अपने-आप पर भी बोझ है। परिश्रम के द्वारा ही

मनुष्य अपना जीवन सार्थक और सफल बना सकता है। मानव-जन्म अनमोल है। इसे निरर्थक गवाँ देना ठीक नहीं है। मनुष्य का जन्म ही किसी-न-किसी कार्य के उद्देश्य से होता है। लोक और परलोक दोनों ही कर्म के द्वारा सुलभ होते हैं इसलिए, कर्म का स्थान सर्वत्र सर्वोपरि है। कर्म की महत्ता प्रत्येक युग में स्वीकृत हुई है। आलस्य सामाजिक विकास में सबसे बड़ा बाधक है। इतिहास साक्षी है कि जिस समाज ने जितना परिश्रम किया, जितना उद्योग किया, उसका उतना ही विकास हुआ है।

मनुष्य संसार में जन्म लेता है तो उसकी मृत्यु भी अवश्यम्भावी है। काल किस क्षण उसे अपना ग्रास बना ले, यह भी निश्चित नहीं है। इसलिए, किसी कार्य को करने में विलम्ब करना भी उचित नहीं है-

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करोगे कब्ब॥

कबीर में प्रबल आत्मसम्मान है। कबीर एक गृहस्थ-संत हैं। अपनी आजीविका के लिए उन्होंने जुलाहा-वृत्ति को अपनाया। कबीर को बहुत की चाह नहीं है। वे तो बस उतना ही अर्जित करते हैं जितने में उनका पेट भी भर जाए और साधु-सेवा भी हो जाए। कबीर परिश्रम से प्राप्त अन्न-वस्त्र के द्वारा जीवन-यापन करना उचित समझते हैं। परिश्रम और उद्योग से उपार्जित अन्न-धन ही श्रेष्ठ है। माँगना कबीर के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाता है। कबीर कर्मयोगी हैं। उनका कर्मयोग सन्यासियों तथा गृहस्थों, दोनों के लिए प्रेरणास्रोत है। भिक्षार्जन जीविका का आधार नहीं होना चाहिए। उद्योग से अर्जित किए गए संसाधन ही प्रसन्नता देते हैं। कबीर के कथनानुसार किसी से कुछ माँगने पर स्वाभिमान, प्रतिष्ठा तथा आपसी प्रेम तीनों तत्क्षण समाप्त हो जाते हैं-

आब गई आदर गया नैनन गया सनेह।
ये तीनों तब ही गये जबहि कहा कछु देह॥

कबीर अपने लिए नहीं, समाज के लिए चिन्तित हैं। वे तो कुछ न होते हुए भी बादशाह हैं, कुछ भी पास न होने पर भी उनके पास सब-कुछ है। क्योंकि, कबीर को आत्म-तृप्ति है। उनके हृदय में कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा नहीं है। उन्हें अपनी चिन्ता भी नहीं है। सभी चिन्ताओं से मुक्त उनका मन बेपरवाह है। फक्कड़ता उनके स्वभाव में है। ऐसा व्यक्ति जिसके हृदय में कोई कामना न हो, वास्तव में वही शहंशाह है। स्वार्थी उद्यमों से कबीर का कोई लेना-देना नहीं है। वे अकाम-निष्काम कर्मयोगी हैं। इसी निष्काम कर्म से कबीर ने ब्रह्म-ज्ञान पा लिया है। ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त हो जाने पर कबीर कामना-शून्य हो गए। कबीर में न कोई वासना बची, न आकांक्षा रह गई। सभी वासनाओं और आकांक्षाओं का विसर्जन हो चुका है। मन के सभी विकारों से ऊपर उठकर कबीर अपनी आत्मा में संतुष्ट हैं-

चाह गई चिंता मिटी मनुवाँ बे-परवाह।
जिनको कछु न चाहिये सोई साहंसाह॥

मध्यकालीन भारत में समाज अनेकानेक विषमताओं से ग्रस्त था। मनुष्य एक ओर परम्परागत लोकाचार को अपनाने के लिए बाध्य था तो दूसरी ओर धर्मशास्त्रों की आड़ में तर्कहीन कर्मकाण्डों को उस पर थोपा जा रहा था। मानवता पथ-भ्रष्ट हो चुकी थी। इसी समय कबीर का आविर्भाव हुआ। कबीर ने निर्भीकता के साथ समाज की सड़ी-गली मान्यताओं का खण्डन किया। "सब बाहरी धर्माचारों को अस्वीकृत करने का अपार साहस लेकर कबीरदास साधना के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। केवल अस्वीकार करना कोई महत्त्व की बात नहीं है। हर कोई हर किसी को अस्वीकार कर सकता है, पर किसी बड़े लक्ष्य के लिए बाधाओं को अस्वीकार करना सचमुच साहस का काम है बिना उद्देश्य का विद्रोह विनाशक है, पर साधु उद्देश्य से प्रणोदित विद्रोह शूर का धर्म है।"[14] कबीर का लक्ष्य काव्य-रचना नहीं है। कविता के माध्यम से उन्होंने मनुष्य के सामाजिक और आध्यात्मिक उत्थान का प्रयास किया। "कबीर की कविता ऐसी विशिष्ट है कि वह शिष्ट-काव्य और लोक-काव्य के भेद को मिटाती है। वह वाचिक संस्कृति की देन है और लोक प्रतिभा की सृजनशीलता का विलक्षण उदाहरण है। वह लोकजीवन के अनुभवों से रची हुई है इसलिए जनता के जीवन और स्मृति में बसी हुई है।"[15]

कबीर एक अनुभवसिद्ध महात्मा हैं। संत होते हुए, उन्होंने जीवन की व्यावहारिकता को अत्यन्त गहराई से देखा-जाना। उन्होंने समाज का अज्ञान और दु:ख देखकर उसे दूर करने का बीड़ा उठाया। उनकी वाणी में आक्रोश और सुधार का सम्मिलित स्वर सुनाई देता है। ज्ञान में ही वह शक्ति है जिससे मनुष्य के दु:खों का निवारण हो सकता है इसलिए, कबीर ने समाज को ज्ञान के व्यावहारिक पक्ष का उपदेश दिया। किन्तु, कबीर इस बात से क्षुब्ध हैं कि उनके अनुभूत सत्य को समाज सुनना ही नहीं चाहता। अज्ञान में डूबा मनुष्य अपने ही दु:खों में भटक रहा है। सच सुनने की उसकी इच्छा नहीं है। कबीर जानते हैं कि सच कहना कितना कठिन कार्य है, उसमें समाज के द्वारा दण्डित किए जाने का भी खतरा है। फिर भी, वे उस खतरे का सामना करने के लिए तैयार हैं। संसार इस तरह बावला हो गया है कि सच सुन कर मारने के लिए दौड़ता है और झूठ पर विश्वास करता है-

साधो देखो जग बौराना।
साँची कहौ तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना॥

कबीर में साहस और आत्मविश्वास दोनों कूट-कूट कर भरा है। उन्हें अपने अनुभवजनित ज्ञान पर जरा भी शंका नहीं है। जीत और हार उन्हें डिगा नहीं सकते हैं। वे पूरे आत्मविश्वास के साथ अपने ही बनाए मार्ग पर चलते रहे। इस मान और दाँव में अगर सिर भी कट जाए तो कबीर को इसकी परवाह नहीं है-

हारौं तो हरिमान है, जो जीतूँ तो दाँव।
पारब्रह्म सौं खेलता, जो सिर जाय तो जाय॥

एसोसिएट प्रोफेसर-हिन्दी विभाग
श्याम लाल महाविद्यालय (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय

संदर्भ :

1. कबीरदास: चिन्तन और सर्जन, संपादक-डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित, कविता के नये प्रतिमान: कबीर की प्रासंगिकता, लेखक-डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, संस्करण-1990, पृ. 2
2. वही, पृ. 3
3. कबीर का सच, संपादक-सोलजी, ढाई आखर का प्रेम और विश्व, लेखक-प्रफुल्ल कोलख्यान, संस्करण-2006, पृ. 156
4. कबीर, संपादक-विजयेन्द्र स्नातक, भारतीय धर्म साधना में कबीर का स्थान, लेखक-हजारी प्रसाद द्विवेदी, तृतीय संस्करण-1970, पृ.-127
5. कबीर का सच, संपादक-सोलजी, कबीर और आज का समय, लेखक-मैनेजर पांडेय, पृ.-73